Cognitive Thinking: An International Journal of Interdisciplinary Studies
Vol. 2, Issue-1 (January-March 2026), pp.142-147, ISSN: 3107-5088, www.cognitivethinking.in

आरक्षण विधिशास्त्र का नवक्षितिज
(New Horizons of Reservation Jurisprudence)

डॉ० सुरेन्द्र नाथ यादव
एल.एल.एम., नेट, पी.एच.डी., प्राचार्य, जनहित कॉलेज ऑफ ला, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उ.प्र.

Article: Received: 10/03/2026, Accepted: 28/03/2026, Published:31/03/2026.
D.O.I. https://doi.org/10.5281/zenodo.22083609
© 2026 The Author(s). This is an Open Access article/ Journal distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are properly credited. (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/)

सारांश: आरक्षण की अवधारणा भारतीय सांविधानिक विधिशास्त्र में सामाजिक क्रान्ति को सुस्थापित करने की अवधारणा है। इस अवधारणा के माध्यम से समाज के उपेक्षित, शोषित, तथा अन्य प्रकार से पिछड़े हुए सामाजिक वर्ग के लोगों के सामाजिक उत्थान का पथ प्रशस्त हुआ है। आर्थिक संसाधनों के वितरण में नियमों में छूट प्रदान कर उन्हें उनके प्राप्तव्य को दिलाना, छात्रवृत्ति का वितरण, शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए इन वर्गों को वरीयता प्रदान करना, तथा राज्याधीन सेवाओं में ऐसे वर्गों के लिए नियमों में शिथिलता प्रदान कर स्थान देना, आरक्षण की अवधारणा के विविध उपादान है। प्रारम्भिक नियुक्तियों से प्रोन्नत के स्तर तक ऐसे वर्गों को विशेष सुविधा प्रदान कर उन्हें समान सामाजिक प्रास्थिति प्रदान करना, आरक्षण की अवधारणा का केन्द्रीय बिन्दु है। विधिशास्त्र में समाज के दुर्बलतर वर्गों को इस प्रकार की विशिष्ट सुविधा प्रदान करने की अवधारणा को प्रतिवर्ती भेद–भाव (Reverse Discrimination) अथवा प्रतिरक्षात्मक भेदभाव (Protective Discrimination) की संज्ञा दी गई है। समाज के दुर्बलतर वर्गों के समान भावभूमि प्रदान करने की नीति अपनाकर उन लोगों को लाभ पहुंचाया जाता है जो सदियों से नाना प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, जातीय तथा अन्य सन्दर्भों में भेद–भाव के शिकार रहे हैं।

मुख्य शब्द: सामाजिक न्याय , पिछड़ा वर्ग, संवैधानिक समानता , संरक्षणात्मक भेदभाव , अनुच्छेद 15 एवं 16 , सामाजिक उत्थान

प्रस्तावना: निश्चित रूप से समाज में धनी, गरीब, अगड़े–पिछड़े, पददलित शोषित एवं अत्यन्त गरीबी रेखा से निचे जीवनयापन करने वालों का वर्ग अस्तित्व में है और जब तक इन वर्गों का समाज में अस्तित्व बना रहेगा। समाज में समता की संकल्पना विवाद का विषय बनी रहेगी। आरक्षण की अवधारणा समाज के विविध वर्गों को धीरे–धीरे समापन के पथ की ओर ले जाने की अवधारणा है और इससे समता की संकल्पना को यथार्थ रूप में अनुभूतित किया जा सकता है। यह एक शाश्वत सत्य है कि समता का अधिकार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक अधिकार है और यह हमारे संविधान का एक सुनहरा हस्ताक्षर है परन्तु इसे तब तक अनुभूतित नहीं करा सकते जब तक समाज में जो बहुत ऊँचे स्तर पर पहुंचे हुए लोग है उनकी प्रास्थिति को नीचे की ओर न ले जाया जाए और जो अत्यन्त ही असमान होकर नीचली प्रास्थिति पर जीवन जी रहे हैं उन्हें राज्य के द्वारा धीरे–धीरे जीवन के ऊँचे स्तर की ओर ले जाया जाए। इसीलिए हमारे संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में विविध आधारों पर समाज के किसी भी व्यक्ति के साथ भेदभाव करने की मनाही की गई है।

आरक्षण की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि राज्य सामान्य वर्ग के लोगों को आरक्षित श्रेणी में प्रवेश की अनुमति नहीं देता। वही राज्य को यह अधिकार नहीं है कि अत्यधिक पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित पदों में भाग लेने के लिए समृद्ध पिछड़े वर्गों को रोक सके। इतना स्पष्ट है कि अनुच्छेद 15(4) और 16(4) राज्य के पिछड़े वर्गों को अलग–अलग श्रेणी में विभक्त कर उनके लिए अलग से आरक्षण करने के लिए असमर्थ नहीं है। अनु. 16 खण्ड (4) में प्रयुक्त शब्द पिछड़े हुए ''नागरिकों के किसी वर्ग'' अत्यन्त व्यापक है और पिछड़ा में बहुलवाद का समर्थन करता है। अतः आरक्षण की अवधारणा को इस तरह कार्यान्वित किया जाना चाहिए कि उससे अत्यन्त पिछड़ा वर्ग उन लोगों की

तुलना में अत्यधिक लाभान्वित हो सके जो कम पिछड़े है। यदि हम वंचित लोगों को सामान्य लोगों की तुलना में वरियता देकर प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए सक्षम बनाते हैं तो हमें कम पिछड़ों की तुलना में अत्यधिक पिछड़ों के साथ भी यही व्यवहार करना चाहिए। जब तक आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत नहीं हुई है तब तक विधान की दृष्टि से अत्यधिक पिछड़ों तथा ऐसे लोगों के लिए जिनका राज्याधीन सेवाओं में न्यूनतम प्रतिनिधित्व है। सम्पन्न पिछड़ों की अपेक्षा उन्हें वरियता दी जा सकती है और ऐसा वर्गीकरण किया जा सकता है।[1]

आरक्षण की अवधारणा पिछड़े वर्गों को सामान्य वर्गों के स्तर पर लाने की एक न्यूनतम प्रतिभूति है और सामाजिक दर्शन का नया मापदण्ड है आरक्षित श्रेणी के व्यक्तियों के लिए अनारक्षित पदों के लिए आवेदन करने की मनाही नहीं है। यदि उनमें योग्यता और दक्षता नहीं है। यदि उनमें योग्यता और दक्षता है तो वे सामान्य पदों के लिए आवेदन कर सकते हैं।

पिछड़े वर्गों की अवधारणा

आरक्षण की अवधारणा की ऐतिहासिकता से यह स्पष्ट है कि पिछड़े वर्ग शब्द की स्पष्ट व्याख्या नहीं हो पायी है ऐतिहासिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग शब्द की व्युत्पत्ति 19वीं सदी के द्वितीय दशक में दिखाई पड़ती है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनी स्थापना के साथ–साथ, राजनीतिक आन्दोलन के साथ–साथ सामाजिक आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की थी। इसके प्रथम सत्र में भी कुछ सदस्यों ने अस्पृश्यता का प्रश्न उठाया था और 1886 के द्वितीय सत्र में देश के सभी वर्गों के लिए तथा उनके हितों के संरक्षण के लिए समान रूप से चिन्ता व्यक्त की गई। 1887 के तीसरे सत्र में हिन्दू मुसलमान और पारसी लोगों के लिए वर्ग शब्द का प्रयोग किया गया और 1892 के सत्र में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि सामाजिक सुझाव के कार्यक्रमों को ऐसे वर्गों या व्यक्तिगत समुदायों पर छोड़ देना चाहिए।[2]

1930 में बाम्बे कमेटी ने इस सन्दर्भ में इस बात पर जोर दिया था कि वंचित वर्गों में केवल अस्पृश्य लोगों को ही सम्मिलित किया जाए और शेष लोगों को पिछड़ा वर्ग का माना जाए और ऐसे वंचित या पिछड़ों के लिए उन्होंने 3 श्रेणियां सुझायी थी।

1. वंचित वर्ग – जिसमें केवल अस्पृश्य हो।
2. आदिम जनजातियां एवं पहाड़ी जनजातियां
3. अन्य पिछड़ा वर्ग जिसमें घुमक्कड़ जनजातियां भी सम्मिलित हो।

इस समिति ने पूरे पिछड़े वर्ग का नाम माध्यमिक वर्ग (Intermedeat classes) रखने का सुझाव दिया।[3]

पिछड़े वर्गों की नई अवधारणा : पिछड़े वर्गों की अवधारणा की अनेक व्याख्याएं होती रही है और उन व्याख्याकारों में उच्चतम न्यायालय की एक नई कड़ी जुड़ गयी है नेशनल लिगल सर्विस अथारिटी बनाम भारत संघ[4] में उच्चतम न्यायालय ने हिजड़ों को भी पिछड़ा वर्ग मानकर इन्हें आरक्षण देने का आदेश दिया है।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति की अवधारणा : भारत के संविधान के अनुच्छेद 360 (प्रविष्टि 24) में अनुसूचित जातियों को परिभाषित करते हुए यह कहा गया है कि ऐसी जातियां मूलवंश या जनजातियां अथवा ऐसी जातियों मूलवंशों या जनजातियों के भाग या उनके वर्ग अभिप्रेत हैं जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 341 के अधीन अनुसूचित जातियां समझा जाता है, इसी तरह अनुच्छेद 307 (प्रविष्टि 25) में अनुसूचित जातियों को परिभाषित करते हुए यह कहा गया है कि अनुसूचित जनजातियां से ऐसे जनजातियां या जनजाति समुदाय अथवा ऐसी जनजातियों या जनजाति समुदायों के भाग या उनके वर्ग अभिप्रेत है जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजातियां समझा जाता है। वस्तुतः अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की अवधारणा की रूपरेखा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले ही तय कर दी गई थी। भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रथम अनुसूची के प्रथम भाग में अनुसूचित जातियों की अवधारणा को वंचित वर्गों से जोड़कर यह स्पष्ट किया गया था कि अनुसूचित जाति का तात्पर्य ऐसी जातियों, वंशों या जनजातियों से है जिन्हें पहले वंचित वर्गों के रूप में जाना जाता था। भारत स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 में भी अनुसूचित जाति का यही अर्थ रखा गया था और भारत के संविधान के अनुच्छेद 341 में भी यही कहा गया है कि उन जातियों मूलवंशों या जनजातियों अथवा जातियों मूलवंशों या जनजातियों के भागों या उनके युथों (वर्गों) को राष्ट्रपति निर्दिष्ट करेगे और संविधान के प्रयोजनों के लिए उन्हें संघ या राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जातियां समझा जायेगा।

1. डॉ. परमानन्द सिंह : इक्वलिटी रिजरवेशन एण्ड डीसक्रिमिनेशन इन इण्डिया, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, न्यू देलही, 1982, पृ. 209, 210.
2. सोशल मुवमेन्ट एण्ड द इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट, तमिलनाडू इन दी नाइटीन थर्टीज इरछिक 1977 अध्याय प्रथम
3. रिपोर्ट ऑफ दी स्टेट कमेटी; गवर्नमेन्ट ऑफ बाम्बे, 1930, पृ. 8, 9.
4. ए.आई.आर. 2014 सु.को. 1863

भारत का संविधान महिलाओं के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके सामाजिक–आर्थिक एवं वैयक्तिक विकास के लिए विशेष प्रावधानों का उल्लेख करता है और सांविधानिक सुविधाओं को देने के लिए पुरुष और स्त्री में हमारा संविधान कोई भेदभाव नहीं करता।

भारत के संविधान के अनुच्छेद–16(1) में राज्याधीन सेवाओं में नियोजन के विषय में अवसर की समता प्रदान की गई है। वहाँ यह कहा गया है कि राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी। अनुच्छेद–16(4) अनुच्छेद–14 एवं 15 में विधि के समक्ष समता तथा धर्म मूल वंश जाति लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध जैसे समता के नियमों को राज्याधीन सेवाओं में नियोजन या नियुक्ति के सन्दर्भ में समता की अवधारणा को लागू करता है। अतः इन तीनों अनुच्छेदों–(14, 15, 16) की त्रिवेणी सिविल सेवकों को समता के मूल अधिकार की धारा में अवगाहित करती है।

The function of civil service in the modern state is not merely the improvement of Government; without it, in deed, Government is self would be imposible.[1]

समता को क्षमताविहीन बनाना समता की अवधारणा के साथ अन्याय करना है। समता का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति में मानसिक दक्षता तथा शारीरिक क्षमता समस्तरीय है। परिवार के सभी व्यक्ति एक परिवार के होकर भी रंग, रूप, शक्ति तथा बौद्धिक कौशल में समान नहीं होते। प्रजातन्त्र में ऐसी समता की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रो. वीमन बिहारी मजुमदार[2] के अनुसार प्रजातन्त्र में समता का तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व तथा पूर्णक्षमता को विकसित करने का समान अवसर प्रदान करना है। सामाजिक संस्कृति में पहुंच का समान अवसर तथा सभी शैक्षणिक संस्थाओं में प्रशिक्षण का समान अवसर प्रदान करना प्रजातांत्रिकी समता की अवधारणा है। समता की अवधारणा यह भी रेखांकित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लिखित या भाषण की स्वतन्त्रता की समान सुविधा प्रदान की जाय। ऐसी सुविधाओं पर कुछ वर्ग विशेष का आधिपत्य समता की अवधारणा को झूठलाना है। समता की अवधारणा सभी लोगों को समर्थन, विरोध करने हेतु लोगों के साथ आने की समान अवसर की भावभूमि प्रदान करना है। अन्ततः समता की अवधारणा सभी व्यक्तियों को विधि के समक्ष समान समझने तथा किसी को भी कानून के ऊपर न समझने की अवधारणा है। संक्षेप में प्रजातांत्रिकी समता की अवधारणा, सामाजिक, आर्थिक, विधिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता की अवधारणा है।

स्वातन्त्रयोत्तर भारत में दो घटनाएं ऐसी हुई जिसने ग्रामीण क्षेत्रों के शक्ति सन्तुलन को बदल दिया। जमींदारी का समापन तथा हरित क्रान्ति ने कृषकों का एक ऐसा वर्ग खड़ा कर दिया जो साधन सम्पन्न हो गया परन्तु जो शिक्षा तथा सरकारी नौकरियों की दृष्टि से पिछड़ा था। फलस्वरूप इस नये ग्रामीण धनाढ्य वर्ग ने तथाकथित पिछड़ा वर्ग का नेतृत्व संभाला और राजनीतिक खेल में अपनी सहभागिता बढ़ाई। यह नव धनाढ्य वर्ग जाति के आधार पर आरक्षण का आदी था क्योंकि इस आधार पर मिलने वाले लाभों को यह वर्ग स्वयं आत्मसात करने में अक्षम था और संघर्ष तो सत्ता में अधिक हिस्सेदारी पाने में था, परन्तु लड़ाई के लिए सामाजिक न्याय की लड़ाई का नाम दे दिया गया। इसमें सन्देह नहीं कि यह वर्ग अनेक लाभों से वंचित था, परन्तु यह भी ध्यातव्य है कि इनकी माँगे युक्तियुक्त एवं प्रजातान्त्रिकता के पर्दे से ढकना होगा। अनेक कारणों से तथाकथित अगड़ा वर्ग इनकी मांगों का विरोध कर रहा है।

अनुच्छेद 14, 15 व 16 भारतीय संविधान के ह्रदय और आत्मा है। अतः न्यायालयों ने इनके निर्वचन में अत्यन्त मानवीय संदर्भों को प्रस्तुत किया है। यदि ये अनुच्छेद न भी होते तो भी सम्भवतः अनुच्छेद 14 का वटवृक्ष अपनी छाया में सभी नागरिकों को समता का समान मंच प्रदान कर सकता था, परन्तु अनेक विधिशास्त्रियों ने इस बात को रेखाकिंत किया है कि संविधान में उल्लिखित सिद्धान्त कुछ होते हैं और व्यवहार में उनका पालन दूसरे तरीके से होता है।

अनुच्छेद 15(3) अपने आप में पूर्णतः निरपेक्ष है और यदि राज्य महिलाओं के उत्थान के लिए कोई विशेष प्रावधान बनाना चाहता है तो इस अनुच्छेद के द्वारा ऐसे प्रावधान पूर्णतः संरक्षित माने जायेंगे। संविधान निर्मात्री सभा में जब इस प्रावधान पर विचार हो रहा था तो संविधान सभा के सलाहकार श्री बी.एन. राव ने इस संदर्भ में वाशिंगटन में जस्टिस फ्रेंक फर्रटर द्वारा अभिव्यक्त विचारों को सभा के सामने रखा था। जिसमें उन्होंने यह कहा था कि महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कुछ विशेष प्रावधानों का होना आवश्यक है, उदाहरण के लिए बच्चों के जन्म के पहले और बाद की स्थितियों में उन्हें विशेष छूट दिया जाना आवश्यक है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान में नारी को सशक्त करने के लिए विशेष प्रावधान किये गये हैं। संविधान के अनुच्छेद 243 में संविधान के 73वें संशोधन विधेयक 1992 द्वारा महिलाओं की स्थिति में विशेष सुधार किया गया है और पंचायती राज व्यवस्था में उन्हें आरक्षण प्रदान किया गया है तथा अनुच्छेद 243(डी) में जो आरक्षण की व्यवस्था की गयी है उसमें स्पष्ट किया गया है कि अनुसूचित जाति एवं

1. हरमन फाइनर : द थियरी एन प्रकार्टस आफ माडर्न गवर्नमेन्ट, सुरजीत पब्लिकेशन्स, 1979, पृ. 709.
2. प्रिसिंपुल्स ऑफ पोलिटिकल साइन्स एण्ड गवर्नमेन्ट, नौवां संस्करण, मण्डल ब्रदर्स एण्ड कॉलेज स्ट्रीट, कलकत्ता, 1961, पृ. 120.

जनजातियों के लिए पंचायत के सदस्यों की संख्या में चुने जाने के लिए जो आरक्षित स्थान किये जायेंगे उसमें आरक्षित संख्या के कुल भाग के 1/3 भाग अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए सुरक्षित रहेगा साथ ही अनुच्छेद 243(डी) खण्ड (3) में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक पंचायत में निर्धारित संख्या का 1/3 भाग महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगा।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 23 व 24 में बच्चों के सन्दर्भ में सांविधनिक सुरक्षा प्रदान की गयी है। जहाँ अनुच्छेद 23 में उनसे बलात् श्रम कराने या उनके दुर्व्यवहार पर प्रतिषेध लगा दिया गया है वहीं अनुच्छेद 24 में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि 14 वर्ष से कम आयु के किसी भी बालक का किसी कारखाने या खान में काम करने के लिये नियोजित नहीं किया जायेगा तथा किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जायेगा। वस्तुतः इसके साथ यदि हम संविधान के चौथे भाग में अनुच्छेद 29 द्वारा किये गये प्रावधान को निर्वचित करें तो यह स्पष्ट है कि यह बालकों के स्वास्थ्य की रक्षा और उनकी शक्ति के दुरूपयोग न होने का संकल्प है। साथ ही आर्थिक विपन्नता के आधार पर उन्हें ऐसी नौकरियों में जाने से रोकना है जिससे उनकी अवस्था और शक्ति का शोषणन न हो सके। यह अनुच्छेद इस बात पर भी जोर देता है कि बच्चों को ऐसी सुविधा और अवसर प्रदान किया जाए कि वे स्वस्थ, स्वतंत्र एवं गौरवशाली वातावरण में अपना विकास कर सकें, शैशव व युवा अवस्था को शोषण एवं अनैतिकता से बचाया जा सके। अनु. 45 में 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने की बात की गयी है और अब संविधान में संशोधन कर अनुच्छेद 21(ए) के द्वारा मूल अधिकार का नाम दे दिया गया है। भारत में स्वतन्त्रता के पूर्व एवं पश्चात् भी अनेक ऐसी संविधियां बनी हैं जो बच्चों को संकटमय नौकरियों में जाने से रोकने के लिए प्रावधान करती हैं। बालक नियोजन अधिनियम 1936, कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952, जैसी संविधियों में बच्चों को संकटमय कारखाने में काम करने से रोकने की बात कही गयी है। पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ[1] में 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को एशियाड की विभिन्न परियोजनाओं में कार्य में लगाने पर सामान्य पारिश्रमिक अधिनियम 1976, ठेका श्रम अधिनियम 1970, प्रवासीकर्मकार नियोजन अधिनियम 1979 के उपबन्धों का उल्लघंन तथा अनु. 24, 14, 21 का उल्लघंन माना है। सलाल हाइड्रो प्रोजेक्ट[2] में यही बात दोहरायी गयी है। उच्चतम न्यायालय ने लक्ष्मीकान्त पाण्डेय बनाम भारत संघ[3] के मामले में बच्चों की महत्ता उनकी सुरक्षा एवं अन्य पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है और अन्तर्राष्ट्रीय दत्तक ग्रहण की प्रक्रिया के लिये विशेष निर्देश जारी किये हैं। उसी मामले में बच्चों के कल्याण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नीति का भी उल्लेख किया गया है जहाँ बच्चों को राष्ट्र की महत्वपूर्ण सम्पदा मानते हुए उनके सर्वाधिक विकास के लिए समान अवसर प्रदान करने की बात कही गयी है। न्यायालय ने यह स्पष्ट कहा है कि प्रत्येक बालक का यह अधिकार है कि उसे प्यार मिले और स्नेह और प्यार के वातावरण में उसका विकास हो तथा ऐसा पारिवारिक वातावरण मिले जहाँ वे अपने को समाज का सही ढंग से अंग समझ सके।

बालकों के विरूद्ध अपराध अधिनियम 2006 प्रस्तावित कर बच्चों की स्थिति में सुधार की दिशा में एक सराहनीय कदम उठाया है। इससे बच्चों को घर एवं घर से बाहर के दुर्व्यवहार एवं दुरूपयोग से मुक्ति मिलेगी। इस विधेयक में बाल दुरूपयोग की व्यापक परिभाषा की गयी तथा बच्चों के साथ छेड़छाड़ तथा उनके लैंगिक दुरूपयोग को अपराध की मानक परिभाषा में जोड़ा गया है तथा 12 वर्ष की अवस्था से कम बालक, बालिकाओं के साथ लैंगिक व्यवहार के लिए न्यूनतम 5 वर्षों के दण्ड का प्रावधान किया गया है। सरकार को अनाथालयों तथा बाल कल्याण गृहों के बच्चों के दुरुपयोग को रोकने की दिशा में भी उक्त प्रस्तावित अधिनियम में विशेष प्रावधान करना चाहिए क्योंकि यही वे स्थल है जहाँ बाल दुरुपयोग बाल दुर्व्यवहार तथा बाल अतिचार एवं बाल शोषण की घटनाएँ अधिक हो रही है। इस संदर्भ में न्यायपालिका, पुलिस तथा स्वयं सेवी संस्थाओं को आगे आकर भावात्मक उपचार का प्रश्रय लेना होगा तभी बाल कल्याण की योजना सार्थक हो सकेगी।

वस्तुतः आरक्षण एवं सामाजिक न्याय की अवधारणा महिलाओं को गरिमामय जीवनयापन करने का अधिकार देती है।[4] हमारी न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 के नवोन्मेषी तथा गत्यात्मक विश्लेषण में यह स्पष्ट किया है कि गरिमामय

1. ए.आई.आर 1982 सु.को. 235
2. (1983) 2 सु.को.के. 181
3. (1985) सु.को. 244
4. टी. सरिता बनाम टी वेंकट सुवैय्या, ए.आई.आर. 1983, आन्ध्र प्रदेश, 356, हरविन्दर कौर बनाम हरमिन्दर सिंह, ए.आई.आर. 1984, देलही 66, सरोज रानी बनाम सुदर्शन कुमार चढ्ढा, ए.आई.आर. 1984, सु.को. 1562, भूपिन्दर कौर बनाम अजायब सिंह (1982) 1, डी मसी 462, विनोद कुमार बनाम स्टेट ऑफ पंजाब, ए.आई.आर., 1982, पंजाब–हरियाणा, पृ. 372., प्रतिमा रानी बनाम सरोज कुमार, ए.आई.आर. 1985 सु.को. 628, तुकाराम बनाम महाराष्ट्र राज्य (1979)2 सु.को.के. 143, गुरूपद बनाम हीरा बाई, ए.आई.आर. 19779 सु.को. 1229, महाराष्ट्र राज्य बनाम मधुकर नारायन मानडीकर, ए.आई.आर. 1991 सु.को. 107, राम जेठ मलानी बनाम भारत संघ (2011) 8 सु.को.के. 37 जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ (2019) 3 सु.को.के. 39, के. राजीव चारू बनाम इन्डियन यंग लायर्स एशोसिएशन (2019) 15 स्केल 580, जतीन्दर सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2019) (17) स्केल 772.

जीवनयापन के अत्यावश्यक कदमों तथा नीतियों के सन्दर्भ में विधायी तथा कार्यपालिकीय शून्यता दृष्टिगोचर होती है, तो उस शून्यता को न्यायपालिका भरती है।' अनुच्छेद 14, 19, 21 तथा अन्य प्रावधानों का न्यायालयी निर्वचन महिलान्मुखी है। घरेलू हिंसा, सत्रास तथा बन्द कमरे में महिलाओं के साथ मारपीट की घटना का संज्ञान लेते हुए उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत ऐसी महिलाओं की मुक्ति के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका जारी की है।[1] न्यायालय के अनुसार नारी के गरिमामय जीवनयापन के लिए इस याचिका का अनुप्रयोग न्यायोचित तथा सामाजिक है।[2]

उपेन्द्र बक्सी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[3], विशालजीत बनाम भारत संघ[4], गौरव जैन बनाम भारत संघ[5] में वेश्याओं तथा वेश्यावृत्ति में लगे हुए बालकों तथा बालिकाओं के पुनर्वास तथा मुक्ति का निर्देश जारी हुए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है संविधानिक मूल्यों के सन्दर्भ में नारी जीवन को गौरवान्वित करने के अनेक निर्देश न्यायपालिका ने जारी किये हैं। नारी जीवन की गरिमा सांविधानिक मान्यता का देवी स्वरूप है जैसे प्रत्येक व्यक्ति को समभाव से देखने की बात कही गई है।

आरक्षण विधिशास्त्र का वास्तविक विकास तभी सम्भव है, जब वह समाज की बदलती आवश्यकताओं को समझे। आज विधि के सामने केवल अपराध और दण्ड के प्रश्न नही है, बल्कि मानव गरिमा, सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और भविष्य की पीढियों के अधिकार जैसे प्रश्न है। इस लिए आने वाले समय में आरक्षण विधिशास्त्र को अधिक मानवीय और न्याय केन्द्रित बनाना आवश्यक होगा। इस प्रकार आरक्षण विधिशास्त्र के नवक्षितिज आधुनिक विधि व्यवस्था को केवल **"Rule of Law"** से आगे बढकर **"Rule of Just Law"** की दिशा में ले जाने की क्षमता रखते है।

Declaration by Author (s): *"I/We hereby declare that this manuscript is my/our original work, free from plagiarism, and that all sources and any use of Artificial Intelligence tools for content generation or editing have been fully disclosed and verified for accuracy."* **डॉ० सुरेन्द्र नाथ यादव**

1. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम ओ.पी. लोधा, ए.आई.आर. 1997 सु.को. 2021.
2. श्री बलवन्त सिंह (1996) 3 सु.को.के. 592.
3. (1983) 2 सु.को.के. 191.
4. विशाल सिंह बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1990 सु.को. 1412.
5. (1997) 8 सु.को.के. 114.